



THE TIMES OF INDIA

Date: 12-01-19

End Paternalism

Universal Basic Income's time has come

TOI Editorials



A couple of years after the Economic Survey explored the possibility of rolling out universal basic income (UBI) as a poverty alleviation measure, moves are afoot to actualise it. Sikkim may be first off the block. The Sikkim Democratic Front has included UBI in its election manifesto and believes it can be done in three years. Media reports suggest that the Narendra Modi government may also experiment with some form of cash transfer which will

partially mimic UBI. These developments are welcome as India's extensive but inefficacious welfare system needs an overhaul.

The main arguments in favour of UBI are administrative simplicity once a benefit is universal and the flexibility it offers beneficiaries. It will mark the retreat of a paternalistic state which claims to know better than its citizens what they want. Neither concept is new to India. Tamil Nadu and Chhattisgarh, states with a widely admired PDS system, have universalised benefits. Also, government has for long been offering old age pension through cash transfers to people below poverty line.

Given India's fiscal constraints, UBI cannot be an addition to the existing welfare schemes. It has to substitute for some existing schemes which have outlived their usefulness. The Survey pointed out that there were 950 central schemes which collectively account for about 5% of gross domestic product. Some of the schemes have been around for decades and their benefits need to be reviewed. It's entirely plausible to replace some of these schemes with a cash transfer. Ideally, this should tend towards universalisation as it makes it administratively simpler and cuts down problems associated with targeting beneficiaries. India's welfare system needs to keep up with changes in society and UBI should be the next stage.

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 12-01-19

बैंकिंग क्षेत्र के इन सात रुझानों पर रखें नजर

तमाल बंद्योपाध्याय, (लेखक बिज़नेस स्टैंडर्ड के सलाहकार संपादक और जन स्माल फाइनेंस बैंक लिमिटेड के वरिष्ठ परामर्शदाता एवं लेखक हैं)

केंद्रीय बैंक, भारतीय रिजर्व बैंक (आरबीआई) की वर्ष में दो बार आने वाली वित्तीय स्थिरता रिपोर्ट बैंकिंग तंत्र की सेहत के बारे में जानकारी देती है। ताजा रिपोर्ट, बैंकिंग जगत के दिग्गजों और बैंक शेयरों में निवेश करने वालों के लिए सुखद खबर लेकर आई है। सरकारी बैंकों में फंसी हुई परिसंपत्तियों से निजात मिली है और सुधार की प्रक्रिया नजर आ रही है।

देश के बैंकिंग उद्योग की ऋण पुस्तिका के प्रतिशत के रूप में सितंबर में फंसा हुआ कर्ज 10.8 फीसदी के स्तर पर था, यानी मार्च 2018 के 11.5 फीसदी के स्तर से कम। आरबीआई को उम्मीद है कि मार्च 2019 तक यह घटकर 10.3 फीसदी रह जाएगा। इससे संकेत मिलता है कि देश का बैंकिंग तंत्र सुधार की राह पर है। बैंक अपनी फंसी परिसंपत्तियों के लिए अधिक राशि का प्रावधान कर रहे हैं। इससे उनका प्रॉविजनिंग कवरेज अनुपात सुधर रहा है। वर्ष के आगे बढ़ने के साथ-साथ इसमें और गति आएगी और यह सन 2019 में देश के बैंकिंग क्षेत्र का अहम रुझान साबित होगा।

बैंकों को भविष्य में फंसी परिसंपत्तियों के लिए उतनी राशि का प्रावधान नहीं करना होगा जितना वे अतीत में कर रहे थे। इन बातों का असर मुनाफे पर भी होगा और उसमें सुधार आएगा। इस वर्ष अधिक तादाद में बैंकों के मुनाफे में सुधार होगा और भारतीय स्टेट बैंक और बैंक ऑफ बड़ौदा जैसे अपेक्षाकृत मजबूत बैंक जिन्हें हालिया तिमाहियों में संकट का सामना करना पड़ा, वे तेजी से वृद्धि पथ पर अग्रसर होंगे।

सितंबर 2018 में 21 सरकारी बैंकों में से 12 घाटे में थे। दिसंबर 2015 में जब आरबीआई द्वारा परिसंपत्ति गुणवत्ता समीक्षा के बाद बैंकिंग तंत्र में फंसा हुआ कर्ज बढ़ने लगा तो सरकारी बैंकों ने 1.84 लाख करोड़ रुपये का घाटा दर्ज किया। बॉन्ड प्रतिफल में आई गिरावट भी बैंकों का मुनाफा बढ़ाने में मदद करेगी। सितंबर 2018 तक बॉन्ड प्रतिफल बढ़ता रहा और 10 वर्ष का प्रतिफल बढ़कर 8.23 फीसदी तक पहुंच गया था। इससे सभी बैंकों को नुकसान हुआ। आरबीआई ने उन्हें भारी-भरकम मार्क टु मार्केट (एमटीएम) नुकसान को क्रमबद्ध करने की इजाजत दी। पहले मार्च और उसके बाद जून 2018 में ऐसा किया गया। एमटीएम से तात्पर्य परिसंपत्ति मूल्यांकन की लेखा व्यवस्था से है। यहां इसे सरकारी बॉन्ड के लिए प्रयोग किया जा रहा है।

एमटीएम से तात्पर्य हर तिमाही के अंत में इनकी कीमत से होता है न कि इनके क्रय मूल्य से। बॉन्ड प्रतिफल में गिरावट (दिसंबर के आखिर में यह 7.21 फीसदी था) और कीमतों में उछाल के बाद उन बैंकों को प्रावधान बदलने का फायदा होगा जिन्होंने अपने एमटीएम नुकसान को क्रमबद्ध करने के बजाय नुकसान सहना तय किया। कृषि ऋण, कृषि संकट, कृषि कर्ज माफी समेत किसानों के लिए चाहे जिस तरह राहत प्रदान की जाए, बैंक उनको कर्ज देने से बचेंगे और वास्तविक मुद्दों पर चर्चा तो होगी लेकिन कोई नतीजा नहीं निकलेगा। यही कारण है कि सरकारी बैंकों के लिए मुनाफे की वापसी इस वर्ष चर्चा का दूसरा विषय रहेगी।

तीसरा मुद्दा ब्याज दर चक्र में बदलाव हो सकता है। खुदरा महंगाई नवंबर में 17 महीनों के निचले स्तर पर आकर 2.33 फीसदी रह गई। यह आरबीआई के लक्ष्य से काफी कम है। ऐसे में दरों में कटौती की मांग बढ़ेगी क्योंकि आम चुनाव करीब हैं। अगर कच्चे तेल की कीमत कमजोर बनी रहती है तो फरवरी में दरों में कटौती की संभावना को पूरी तरह खारिज नहीं किया जा सकता। क्या फंसे हुए कर्ज की रिकवरी गति पकड़ सकती है? आदर्श स्थिति में ऐसा होना चाहिए। हर वर्ष डिफॉल्ट के मामलों से जूझते हुए बैंक भी कारोबारी तौर तरीके सीख चुके हैं। हालांकि कई कंपनियां अभी भी व्यवस्था को धता बनाने में कामयाब रहती हैं। दिवालिया संहिता के नियमों में सुधार का दबाव लगातार बढ़ रहा है।

जिन बदलावों की मांग की जा रही है अगर उन्हें अंजाम दिया गया तो यह संहिता अपनी धार खो देगी। इसका असर सुधार की प्रक्रिया पर भी पड़ेगा।

किसानों के संकट का मामला भी इस वर्ष सुर्खियों में रहेगा। कांग्रेस द्वारा तीन राज्यों में कृषि ऋण माफी को राजनीतिक स्टंट करार देने के बाद प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने इस समस्या से बुनियादी तौर पर निपटने का निर्णय किया है। स्वरूप भले बदल जाए लेकिन प्रतिस्पर्धी लोकलुभावनवाद हमारे देश की हकीकत है। राहत पैकेज चाहे जिस स्वरूप में आए लेकिन बैंक किसानों को नया ऋण देने से बचेंगे। वर्ष 2019 में ऋण वृद्धि की गति भी चर्चा में रहेगी। बैंकों पर पहले ही ऐसे क्षेत्रों को ऋण देने का दबाव पड़ रहा है जिन्हें लेकर वे आश्वस्त नहीं हैं या जिनके ऋण के जोखिम का आकलन करने में उनकी विशेषज्ञता नहीं है। जबरन ऋण वितरित कराने से फंसे कर्ज का संकट पुनः सर उठा सकता है।

वर्ष 2019 में सबसे अहम मुद्दा होगा आरबीआई और सरकार के बीच का रिश्ता। अगर गवर्नर शक्तिकांत दास के शुरुआती तीन सप्ताह को किसी तरह का संकेत माना जाए तो कहा जा सकता है कि उन्हें अपने क्षेत्र की जानकारी है। दास ने अपनी पहली बोर्ड बैठक सहजता से निपटाई और केंद्रीय बैंक के आर्थिक पूंजी खाते की देखरेख के लिए बनी विशेषज्ञ समिति भी कमाल की है। आरबीआई के पूर्व गवर्नर वाई वी रेड्डी ने आरबीआई और सरकार के बीच रचनात्मक तनाव की बात की है। साफ कहा जाए तो इसमें कुछ भी रचनात्मक नहीं है। यह मौद्रिक प्राधिकार को लेकर राजकोषीय रसूख का मामला है।

सरकारी बैंकों में पूंजी डालने की ताजा घटना को सरकार द्वारा बैंकों को मजबूत बनाने के सटीक उपाय के रूप में देखा जा सकता है। परंतु क्या इसका निर्णय नियमन के आधार पर होना चाहिए? इस पर निर्णय लें कि एक बैंक को कितनी राशि की आवश्यकता है और किस बैंक को कहां ऋण देना चाहिए? चूंकि सरकार इन बैंकों में बहुलांश हिस्सेदार है इसलिए क्या यह हितों के टकराव का मामला नहीं? क्या नियमन, स्वामित्व निरपेक्ष नहीं होने चाहिए? सारी दुनिया की निगाह आरबीआई और उसके नए गवर्नर पर है। यकीनन बाहरी घटनाएं, मसलन धीमी वृद्धि, व्यापारिक तनाव और अमेरिकी ब्याज दरें आदि भारतीय वित्तीय और बैंकिंग जगत को प्रभावित करेंगी लेकिन वर्ष 2019 में कम से कम पहली छमाही में आंतरिक जोखिम अधिक होंगे। एमएसएमई ऋण का एक बारगी पुनर्गठन होने के बावजूद ऐसे ऋणोन्मुखी, वृद्धि कारक रुख हो सकते हैं जो चुनावी वर्ष में और उसके बाद बैंकों की सेहत के लिए अच्छे नहीं होंगे। यह भी चुनाव नतीजों पर निर्भर करेगा।

सड़क सुरक्षा की संस्कृति को विकसित करने का समय

थॉमस क्युल प्रेसीडेंट, (निसान इंडिया ऑपरेशन्स)

पिछले साल लाल किले से अपने भाषण के तुरंत बाद प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने देश के लोगों को एक और संदेश दिया था, इस बार बिना एक भी शब्द बोले। हालांकि प्रधानमंत्री को उस गाड़ी से जाना था, जो सुरक्षा जरूरतों के लिहाज से विशेष रूप से बनी है और सुरक्षा कारणों से ही उस राह पर ट्रैफिक भी रोक दिया जाता है, लेकिन फिर भी उन्होंने तीन सेकंड का समय निकालकर पहले सीट बेल्ट बांधी। यह कहा जा सकता है कि रणनीति के तहत सुरक्षा का संदेश इस तरह से दिया गया था। लेकिन उसके कुछ घंटे बाद ही मैंने देखा कि दिल्ली में लगभग हर उम्र के लोग सीट बेल्ट लगाने के नियम का उल्लंघन कर रहे हैं, गाड़ी की आगे की सीटों पर भी और पीछे की सीटों पर भी।

सड़क सुरक्षा सभी के लिए अत्यंत महत्व की चीज होनी चाहिए, न सिर्फ इसके सामाजिक प्रभाव के कारण, बल्कि इसलिए भी कि भारत में वाहनों की मांग और संख्या लगातार बढ़ रही है। पिछले 30 साल में भारतीय कार बाजार ने लगातार यह दिखाया है कि उसकी संभावनाएं कई विकसित देशों से भी ज्यादा तेजी से बढ़ रही हैं। मैकेंजी की रिपोर्ट बताती है कि अगले तीन साल में भारत वाहनों का तीसरा सबसे बड़ा बाजार हो जाएगा। और 2040 तक प्रति एक हजार आबादी पर कारों की संख्या नौ गुनी हो जाएगी। पर जब हम सड़क दुर्घटनाओं में मारे जाने वाले लोगों की बढ़ती संख्या को देखते हैं, तो पता लगता है कि गाड़ियों की बढ़ती संख्या के मुताबिक यहां सुरक्षा को लेकर जागरूकता नहीं बढ़ रही। असल में यह संख्या साल-दर-साल बढ़ती जा रही है। कार बाजार की तेजी का यह सबसे खराब नतीजा है। अगर हम सुरक्षा की संस्कृति विकसित नहीं करेंगे, तो यह संकट बढ़ता ही जाएगा।

इसके लिए सभी राज्यों में इस उद्योग के लिए जागरूकता अभियान चलाने की जरूरत तो है ही, साथ ही इंटरनेट का जो नया रूप सामने आ रहा है, वह भी हमारी काफी मदद कर सकता है। इस समय दुनिया भर की कंपनियां ऐसी कारों को विकसित करने पर काफी निवेश कर रही हैं, जो आपस में एक-दूसरे के संपर्क में होंगी। तरह-तरह के सेंसर ड्राइवर को यह बता देंगे कि सड़क पर उसके अलावा और कौन है? कार में लगा तंत्र जरूरत के मुताबिक ड्राइवर को दुर्घटना से बचाव के संदेश भी तुरंत दे सकेगा। इसके साथ ही असावधान ड्राइविंग को रोकने के लिए सरकार ऐसा नीतिगत ढांचा बना रही है कि खतरनाक तरह से गाड़ी चलाने वालों पर भारी जुर्माना लगाया जा सके। खासकर सड़क सुरक्षा के लिए ही एक विशेष बल बनाए जाने पर विचार चल रहा है, ताकि यातायात के नियमों को ठीक ढंग से लागू किया जा सके। देश में जिस तेजी से इन्फ्रास्ट्रक्चर को बनाने और सुधारने का काम चल रहा है, वह भी इस कोशिश को आगे बढ़ाएगा।

ज्यादातर सड़क दुर्घटनाएं गैर-जिम्मेदार ड्राइवरों की गलती का नतीजा होती हैं। यह बताता है कि जरूरत कहां ध्यान देने की है। सीट बेल्ट लगाने जैसे साधारण से नियम को लोग अक्सर नजरंदाज कर देते हैं। मोटर व्हीकल कानून के हिसाब से सीट बेल्ट लगाना जरूरी है, फिर भी सिर्फ 25 फीसदी ड्राइवर इसे लगाते हैं। इस लापरवाही को खत्म करना इसलिए भी काफी मुश्किल है, क्योंकि देश में बिना सीट बेल्ट बांधे गाड़ी चलाने की संस्कृति ही बन चुकी है। संयुक्त राष्ट्र का एक अध्ययन हमें बताता है कि सिर्फ सड़क दुर्घटनाओं की वजह से देश के सकल घरेलू उत्पाद, यानी जीडीपी को तीन फीसदी का नुकसान होता है और इन दुर्घटनाओं में सबसे ज्यादा वे वयस्क मारे जाते हैं, जो हमारे कार्यबल का हिस्सा हैं। इन दुर्घटनाओं में हमारी अगली पीढ़ी का कार्यबल, यानी बच्चे काफी संख्या में चले जाते हैं, इसका आंकड़ा है 43 प्रतिदिन का। ये आंकड़े हमें नहीं बताते कि इनमें से कितने लोग सीट बेल्ट न लगाने की लापरवाही से जान से हाथ धोते हैं। कई बार तो पूरे-पूरे परिवार बेसहारा हो जाते हैं, क्योंकि उनका मुख्य कर्ताधर्ता ही चला जाता है। अगली सीट पर बैठने वाले तो सीट बेल्ट नहीं ही लगाते, पिछली सीट वाले तो इसके बारे में सोचते तक नहीं।

Date: 11-01-19

Waste and Water

A study reveals that garbage dumping remains an intractable problem, raises questions about the Clean Ganga Mission

Editorial



When the National Clean Ganga Mission was launched in 2015, a common criticism was that the project would come a cropper if it did not address the problem of municipal solid waste (MSW) flowing into the river. The mission did have plans of bolstering the network of waste treatment plants across the Ganga's 2,500 km stretch. However, an analysis of the river's water by the Quality Council of India has proved the naysayers right. The study points out that 66 of the 97 towns along the river have at least one drain that flows into the Ganga and notes that only 19 towns across the river's basin have a plant to treat MSW.

Data on the Clean Ganga Mission website offers some insight into where things have gone wrong. Till November last year, the project had completed barely a sixth of the sewage treatment plant (STP) coverage it had envisaged. The issue, however, is not just about the construction of STPs but also their performance. Such plants perform sub-optimally because a large part of India's urban population lives outside sewerage networks. This means that much of the waste they generate does not reach the STPs. The Clean Ganga Mission did aim to strengthen the urban sewerage network. But the mission's website reveals that only 31 of the 131 sewerage infrastructure projects have been completed so far.

Last year, Union Minister of Water Resources Nitin Gadkari said that the government would try to ensure a 70 to 80 per cent improvement in the Ganga's water quality by March 2019. He also spoke of a project to create a cadre of village and town-level volunteers who would help local bodies to monitor the quality of the river's water. However, by all accounts, the Clean Ganga Mission has adopted the same top-down approach which proved to be the undoing of earlier projects to clean it. The failure to reach out to local communities has been particularly telling when it comes to dealing with MSW. It's well-known that such waste is best dealt with at source — segregated into separate heaps meant for recycling or for treatment at MSW plants. But that rarely happens in India's cities. The Quality Council of India study shows how this failing has worked to the detriment of the Ganga. It found rubbish heaps close to ghats in 72 of the 97 towns along the river. The director of the Clean Ganga Mission has said that his team will take stock of the situation in mid-March. Chances are that by then, the project will miss the target set by the water resources minister.
